बौद्ध साहित्य में शिक्षा की उपादेयता

डॉ0 अनिल कुमार पासवान
ग्राम –नहर बरहेत्ता
पो0 –लहेरियासराय
जिला – दरभंगा–846001
anilpaswan719@gmail.com
Mob. No. 6204632526, 7654775142

भारतीय ऋषि ज्ञान के दृष्टा हुआ करते थे, स्रष्टा नहीं महात्मा बुद्ध इन्ही चार आर्यसत्यों के वैसे ही दृष्टा हैं , जिन्होंने धर्म के क्षेत्र में ईशा पूर्व छठी शताब्दी में इस धर्म का सूत्रापात किया। यह वैदिक कर्मकाण्ड के विरूद्ध प्रतिक्रिया तथा उपनिषदों द्वारा शुरू किए गए आंदोलन का तार्किक प्रतिफल था उनके व्यक्तित्व की परीक्षा करने पर ये बातें स्पष्ट हो जाती है कि वे पूर्णतः बुद्धिवादी थे। महात्मा बुद्ध किसी भी तथ्य को विश्वास की कच्ची नीव पर रखना नहीं चाहते थे, बल्कि तर्क बुद्धि की कसौटी पर सब तत्वों को कसना उनकी शिक्षा का प्रधान उद्देश्य था। उन्होने कालामों को उपदेश देते हुए कहा था कि यदि किसी तथ्य को इसलिए मत मानो कि वह परम्परा से चला आया है अथवा वह प्राचीन समय में कहा गया था, धर्मग्रन्थ में कहा गया था या इसका उपदेष्टा गुरू तापस है। या किसी वाद के लिए उसका ग्रहण करना उचित है। इनमें से किसी भी तथ्य को ग्रहण मत करो कि वे धर्म कुशल हैं तथा वे धर्म अनवध अनिन्दनीय हैं तथा ग्रहण करने पर उनका फल सुखद तथा लाभप्रद ही होगा। महात्मा बुद्ध ने अपने अनुयायियों से कहा था कि जिस तरह चतुर पुरूष सोने को आग में गर्म करते है उसे काटते है कसौटी पर कसते है, इतनी परीक्षाओं के बाद यदि वह खरा उतड़ता है, तभी उसे विशुद्ध

स्वीकारते है, उसी तरह ये मेरे वचन है, अतः मान्य है इस दृष्टि से इन्हें कभी भी ग्रहण न करो। स्वयं उसकी जॉच पड़ताल करो और कठिन परीक्षा के उपरान्त उसे मानते हुए तदनुकूल आचरण करो।

तापाच्छेदाच्च निकषात् सुवर्णमिव पण्डितः।

परीक्ष्य भिक्षवो ग्राहथं मद्वचो न तु गौरवान्।

यद्यपि अध्यात्मशास्त्र की गुत्थियों को र्तक के आधार पर सुलझाना बुद्ध का लक्ष्य नहीं था, बल्कि इस कलेश बहुल प्रपंच से उद्धार पाने के लिए सरल आचार मार्ग का निर्देश करना ही इसका प्रमुख उद्देश्य था। शिष्यों द्वारा अध्यात्मविषयक प्रश्नों को सुनकर बुद्ध को चुप हो जाने का एक मात्र यही रहस्य है। श्रावस्ती के चेतवन में बिहार के अवसर पर मालुक्यपुत्र ने बुद्ध से पूछा कि इस लोक के शाश्वत, अशाश्वत, अन्तवान, अनन्त होने के तथा जीव और शरीर की भिन्नता अभिन्नता आदि के विषय में आपकी क्या राय है। महात्मा बुद्ध ने आचार मार्ग के लिए बैराग्य उपशम, अभिज्ञा (लोकोचर ज्ञान) संबोध (परमज्ञान) तथा निर्वाण (आत्यन्तिकी दुखनिवृत्ति) के उत्पन्न करने में वाधक न होने से उन्हे अव्याकृत बत लाया । इस का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा यदि कोई व्यक्ति विषदग्ध बाण से विह होकर कराहता हो और बन्धु वान्ध व चिकित्सा के लिए किसी विषवैध को बुलाने के लिए उघत हो तो क्या उस रोगी के लिए वैद्य के नाम, गोत्र रंग, रूप आदि की जानकारी के लिए आग्रह करना प्रथम मूर्खता होगी।

सारी सुख सुविधाओं को तयागकर रात में घर से बाहर ज्ञान की खोज में निकल जाना ही उनका उद्देश्य था। उन्होंने स्वयं जो गृह त्याग किया, वह

भारतीय परम्परा के अनुकूल ही था। प्राचीन काल से ही ऐसी प्रथा चली आ रही है कि चिन्तनशील व्यक्ति चिन्तन और ज्ञान वृद्धि की खोज में एकान्त स्थान में जाया करते थे । सिद्धार्थ ने भी इस परम्परा का निर्वाह किया। वे सर्वोच्च ज्ञान तथा शान्ति की खोज में थे। बहुत भ्रमण के बाद भी वे संतुष्ट नहीं हुए अंत में निरंजना नदी के किनारे उन्होने छःवर्षो तक कठिन तप किया, फिर भी उन्हे ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। कहा जाता है कि एक बार कुछ नर्तकियाँ गाती हुई जंगल से गुजर रही थी । वह जाते जाते गा रही थी कि वीणा के तार को इतना न कसो कि टूट जाय, और न ज्यादा ढ़ीला करों कि वह बजे ही नहीं। इस गीत के श्रवण के बाद उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई।

बुद्ध के ज्ञान दर्शन के चार प्रमुख है– दुख है दुख का हेतु और दुख का विनाश करना ही दुख निरोध का मार्ग है। जो धर्म है वह हेतु से उत्पन्न होता है, जिनका हेतु है उसका निरोध भी है। बुद्ध का ऐसा मत है कि

ये धर्मा हेतु प्रभवाः हेतु स्तेषां तथा गन्मेहयवदत् ।

तेषांच निरोध एवं वादी महाश्रमणः।

कर्तव्यशास्त्र के विषय में बुद्ध ने इन चार आर्य सत्यों का अपनी सूक्ष्म विवेक बुद्धि से रहस्योद धारित किया है। इस संसार में जीवन दुखों से परिपूर्ण है। इन दुखों का कारण विद्यमान है इन दुखों से वास्तविक मुक्ति मिल सकती है तथा इस निरोध प्राप्ति के लिए उचित उपाय या मार्ग प्रशस्त करना है।

ऋषि पत्तन में महात्मा बुद्ध ने लोकोत्तर धर्म चलाया जो किसी श्रमण या अन्य किसी ने न चलाया हो । वही सर्वप्रथम धर्म चक्र प्रवर्तन हुआ काम एवं विषय सुख में लिप्त होना अनर्थकारी है, साथ ही शरीर को व्यर्थ कष्ट देना भी

बुरा है। अतः इन दोनो अंतों का परित्याग कर मध्यमर्मार्ग का अबलम्बन करना चाहिए महात्मा बुद्ध ने दुख निरोध के लिए आर्य आष्टांगिक मार्ग कहा हैं । इस तरह सम्यक् दृष्टि, सम्यक संकल्प, संम्यक वचन, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका सम्यक् उद्योग, सम्यक् विचार और सम्यक् समाधि कहा है। बुद्ध का मध्यम मार्ग इसी पर आधारित हैं। यही बुद्ध का प्रथम उपदेश था। उनके अनुसार प्रेम द्वारा ही घृणा को जीता जा सकता है। निवार्ण और मुक्ति पर उनका विशेष जोड़ था। अष्टांगिक मार्ग से प्रेरित होकर जो व्यक्ति सच्चा और सीधा जीवन व्यतीत करता है सही अर्थ में वही धर्मात्मा है। अहिंसा, सदाचार और त्याग पर उन्होने अधिक जोर दिया। उनकी महत्वपूर्ण शिक्षा इस प्रकार है। दुसरों की संपत्ति पर लोभ मत करों नशा –पान मत करो– व्यमिचार नहीं करों, किसी से घृणा नहीं करनी चाहिए, सबकी भलाई करनी चाहिए, हिंसा नहीं करो झूठ मत बोलों, किसी को बुरा नहीं मानना चाहिए तथा हृदय को हमेशा शुद्ध रखना चाहिए । उनकी शिक्षा अजीब थी। उनके उपदेश का सार बहुजन हिताय, बहु जन सुखाय एवं आत्मसंयम ही उनके जीवन का आधार था। उन्होने सफल संस्कृति को कर्मप्रधान बताया। धर्म की शरण और उसकी ज्योति में जाना उनका अंतिम उद्देश्य था।

महात्मा बुद्ध ने कहा था कि यह जन्म भी दुख है, जरा भी दुख, व्याधि भी दुख, मरण भी दुख, अप्रिय मिलन भी दुख, प्रिय वियोग भी दुख तथा अपेक्षित वस्तु का न मिलना भी दुख ही है। मानव को माता–पिता पुत्र सम्बन्धी आदि के मरने का दुख सहना पड़ता है, व्याधि और रूग्णता के दुख का अनुभव अधिक होता है इसके साथ ही धन विनाश का दुख सहना पड़ता हैं

बुद्ध के अनुसार दुख का मूल कारण तृष्णा है जो आसक्ति से उत्पन्न होता है । वह आसक्ति रूप शब्द गन्ध, रस, स्पर्श और मनः स्थिति से होती है, जो तृष्णा को जन्म देती है। तृष्णा से ग्रस्त व्यक्ति को ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। उनका विश्वास था कि दुख का निरोध सम्भव है, चूँकि इसका उदभव तृष्णा और अज्ञान से होता है। अतः इसका अन्त आवश्यक है। इसमें कोई शक नहीं कि दुख का कारण तृष्णा, आकांक्षा और लालसा है, जो मानव के अज्ञान और अविधा के कारण होती है। इसके विनाश और निरोध का प्रयत्न करना चाहिए जाति और जरा मरण वर्तमान जीवन में रहकर भावी जीवन के कारण है और वर्तमान जीवन के कारण और कार्य दोनों रूपों में ही स्थित है इन्ही कार्य –कारण की परम्परा में संसार चक्र, भवचक के रूप में चलता है। जीव उसी भवचक्र में पड़ा रहता है। जब तक इससे उन्हें मुक्ति नहीं मिल जाती तब तक उसके दुख का अंत संभव नहीं है।

चतुर अरिआ सच्चानं यथामूतं अदस्सना।

संसरितं दीपभद्वांन तासु तास्वेव जातिषु।।

महात्मा बुद्ध ने मानव उत्कर्ष के लिए वाहायाडम्बरों का खण्डन किया और अन्तः शुद्धि पर विशेष जोर दिया। उन्होने अपने उपदेश में इसी बात पर जोर दिया जो मानवकल्याण के लिए आवश्यक थें। यह व्यावहारिक और क्रियात्मक था उन्होने आचार और विचार की पवित्राता पर विशेष बल दिया।

बौद्ध बिहार तत्कालीन शिक्षा के केन्द्र थे। शिष्य को सद्धविहारिक और आचार्य को अध्यापक कहा जाता था। उपाध्याय का 10 वर्ष तक भिक्षु जीवन व्यतीत करना आवश्यक था। शिष्यत्व ग्रहण करने के समय नवागत छात्रों को

एक संस्कार होता था जिन्हे प्रव्रज्या कहते है। अनीश्वरवादी बुद्ध ने ईश्वर के स्थान पर मानव प्रतिष्ठा पर ही बल दिया। जन्म का कारण कर्मफल उत्पन्न करने वाला अज्ञानरूपी चक्र है और इस चक्र के 12 क्रम इस प्रकार है अविद्या संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श वेदना, तृष्णा, उपादान भव जाति और जरामरण । परिभाषिक रूप से इन्हें प्रतित्य समुत्पाद कहा गया है। संसार की प्रत्येक वस्तु विशिष्ट कारण से पैदा होती है, इसलिए संसार की सभी वस्तुएँ सापेक्ष और परिस्थिति तथा कारण विशेष पर निर्भर और इसीलिए परिमित और अस्थायी है। इस प्रकार बुद्ध कालीन शिक्षा व्यवस्था तत्कालीन साहित्य के अनुकूल थी जिसे सहेजकर या जीवन में उतारकर सार्थक बनाया जा सकता है।

स्रोत एवं सन्द्रर्भ

1. डॉ0– दीनानाथ वर्मा– मानव सभ्यता का इतिहास पृष्ठ – 165

2. आचार्य बलदेव उपाध्याय– भारतीय धर्म तथा दर्शन का अनुशीलन, शारदा संस्थान, पृ0,143

3. ज्ञान सार समुच्चय – श्लोक –31

4. बलदेव उपाध्याय– भारतीय दर्शन, चौखम्बा ऑरेन्टालिया– पृ0,121

5. राधाकृष्ण चौधरी – प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास–पृ0,105

6. उपर्युक्त –पृ0,वही

7. भारतीय दर्शन – उपर्युक्त – पृ0,123

8. राधाकृष्णा चौधरी – उपर्युक्त –पृ0,105

9. संयुक्तनिकाय धम्मटाक्कपवतन सूक्त।

10. दीधनिकाय–2.9

11. महापरिनिव्वाण सुत्रा–2149

12. राधाकृष्ण चौधरी –उपर्युक्त पृ0,116